प्रथम प्रकरण

रीतिकाल और ठाकुर

नामकरण : हिन्दी साहित्य के एक सहस्र वर्षों को विद्वानों ने लगभग तीन भागों में विभाजित किया है -- आदि काल, मध्य काल और आधुनिक काल[१]। मध्यकाल को ऐतिहासिकों ने कई तरह से बांटा। मिश्र बन्धुओं ने उसके तीन उप-विभाग किए -- पूर्व, प्रौढ़ और अलंकृत काल[२]। आचार्य शुक्ल ने उसके दो उपविभाग किए -- पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल। पहले का नाम भक्ति काल और दूसरे का नाम रीतिकाल रखा[३]। मिश्र बन्धुओं ने रीतिकाल को ही अलंकृत काल कहा है[४]। मिश्र बन्धुओं ने अलंकृत शब्द का व्यापक अर्थ ग्रहण किया है। संस्कृत में अलंकार शब्द का अनेकशः व्यवहार साहित्य के समस्त पदों के लिए हुआ। अलंकार शास्त्र कहने से रस, अलंकार, पिंगल आदि समस्त काव्यांगों का बोध हो जाता है। हिन्दी में संस्कृत के ही अनुगमन पर केशवदास जी ने 'अलंकार' शब्द का प्रयोग 'कविप्रिया' में व्यापक अर्थ में किया है[५]। लेकिन संस्कृत में 'रीति' शब्द का व्यवहार व्यापक अर्थ में नहीं होता। वहां तो 'विशिष्टपद रचना रीतिः' ही रीति की परिभाषा है[६]। अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास में शुक्ल जी ने 'रीति' शब्द का प्रयोग रस अलंकार पिंगल आदि

---

१. मिश्र बन्धु विनोद, हिन्दी साहित्य का इतिहास--शुक्ल जी, हिन्दी भाषा और साहित्य -- डा० श्यामसुन्दर दास।
२. मिश्र बन्धु विनोद
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास--आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
४. मिश्र बन्धु विनोद
५. कविप्रिया --तृतीय प्रकाश
६. वामन काव्यालंकार सूत्र

काव्यांगों के लिए किया है जिसे हिन्दी काव्य परम्परा का मान्य अर्थ समझना चाहिए। 'काव्य रीति' का ही संक्षिप्त रूप 'रीति' है।

काव्य कीं रीति सिखी सुकवीन सों
देखी सुनीं बहु लोक की बात[1]।

डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में रीतिकाल को 'कलाकाल' कहा है[2]। कला शब्द से उनका संकेत काव्य शिल्प की ओर है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने रीतिकाल के नामकरणप्रसंग में रस की ओर भी ध्यान दिया है। 'वास्तव में शृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधान शृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई शृंगार काल कहे तो कह सकता है[3]'। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी इसी नाम के लिए सतर्क समर्थन दिया है[4]।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो उस समय के सब कवि रीतिकार नहीं थे। उस समय के सब कवि अलंकारों की एकनिष्ठ साधना में तत्पर नहीं थे। कविता के शिल्प को काव्यात्मा मानने के लिए सब तैयार नहीं थे। लेकिन शृंगार भावना एक ऐसी वस्तु है जो उस काल की सामान्य काव्य प्रवृत्ति कही जा सकती है। भूषण ऐसे कवि भी इसके अपवाद नहीं बन सकते। आलम, बोधा, ठाकुर और घनानन्द जैसे प्रेम पागल कवि रीति की सीमा में नहीं समा सकते। रीतिकाल की काव्य परिधि को बढ़ाने के लिए ठाकुर, आलम, घनानन्द आदि के काव्यों को रीति की कसौटी पर कसने का प्रयत्न दुराग्रह मात्र है। रीतिकाल का प्रत्येक कवि शृंगारी है, किन्तु प्रत्येक कवि रीति ग्रन्थ प्रणेता नहीं है। तत्कालीन परिस्थितियां भी इस शृंगारबहुल रचना के लिए उत्तरदायी हैं। राज सभा में प्रतिष्ठा पाने के लिए, आश्रयदाताओं

---

१. काव्यनिर्णय --भिखारीदास
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३७६--डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल'
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २४१ --शुक्ल जी
४. बिहारी, पृ० १३

के विलासितामय जीवन को उत्तेजित करने के लिए गाथा सप्तशती , आर्यासप्तशती तथा अमरुक शतक आदि काव्य ग्रन्थों से शृंगार की बिखरी सामग्री लेकर, दोहा, कवित्त, सवैयों में भरकर उन्हें दरबारों में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति बड़े जोर पर थी ।

इस प्रकार रीतिकाल के प्रत्येक कवि के काव्यचषक में शृंगार का आसव-न्यूनाधिक परिमाण में पाया जाता है । रीतिकाल या अलंकृत काल नाम तत्कालीन काव्य की एक विशेष प्रवृत्ति की ओर संकेत करते हैं । ये नाम तत्कालीन कवियों के एक विशेष प्रकार की ओर अंगुलि निर्देश करते हैं न कि सब कवियों की ओर । इस-लिए आचार्य शुक्ल द्वारा प्रस्तावित और पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा समर्थित 'शृंगार काल' नाम विशेष उपयुक्त है[1] ।

अवधि निर्धारण : आज पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा किया हुआ हिन्दी साहित्य का काल विभाग प्राय: सर्वमान्य हो गया है[2] । उनके अनुसार रीति-काल के अन्तर्गत सं० १७०० से सं० १९०० तक पूरी दो शताब्दियां आ जाती हैं । लेकिन सत्य तो यह है कि काव्य प्रवृत्तियों के काल विभाजन की कोई निश्चित रेखा नहीं खींची जा सकती। एक प्रवृत्ति के रहते हुए भी काव्याकाश में दूसरी प्रवृत्ति का उदय हो जाता है । सं० १५९८ में कृपाराम की 'हित तरंगिणी' लिखी गई । कृपाराम के बाद भी रीति ग्रन्थों की क्रमबद्ध शृंखला देखी जा सकती है । मोहन लाल का 'शृंगार सागर' (सं० १६१६) ; करनेस के 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण', 'भूप भूषण' (सं० १६३७) ; बलभद्र मिश्र का 'नखशिख' (सं० १६४०) ; रहीम का 'बरवै', 'नायिका भेद' (सं० १६४०), केशवदास की 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' (सं० १६५०) , मोहनदास का 'बारहमासा' (सं० १६५०) ; हरिराम की छन्द रत्नावली (सं० १६५१) , बालकृष्ण की 'रस-चन्द्रिका' (पिंगल, स० १६५७); लीलाधर का 'नखशिख' (सं० १६७९) ; सुन्दर कवि का 'सुन्दर शृंगार' (सं० १६८८) तथा सेनापति का 'षट्ऋतु वर्णन' (सं० १७००)।

---

१. बिहारी , पृ० ४४

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १

इस प्रकार इस काल का आरम्भ सं० १६०० से ही मानना चाहिए । लेकिन सं० १७०० तक भक्ति की भी रचनाएं छाई हुई हैं । दूसरी बात यह है कि रीति शृंगार की रचनाएं सं० १७०० से ही जोर पर चलीं । इसलिए सं० १६०० से सं० १७०० तक के बीच के सौ वर्षों को हम रीतिकाल का प्रस्तावना काल कह सकते हैं । इस काल के उत्तर सीमा के लिए भी यही बात है । सं० १९०० के बाद भी रीतिकाल की शृंगारिक प्रवृत्ति भारतेन्दु काल तक ही नहीं, द्विवेदी काल के कवि सम्मेलनों की समस्यापूर्ति के रूप में जीवित रही । कहने का आशयह है कि साहित्य की प्रवृत्तियां इतिहासकारों की बनाई हुई काल सीमा के पार भी झांकती हैं।

काव्य प्रवृत्तियां: इस काल में रीति ग्रन्थों की राशि से हिन्दी का शास्त्र भंडार भर गया । हिन्दी के ये आचार्य 'काव्य प्रकाश,' 'साहित्य दर्पण,' 'काव्यादर्श,' 'रस तरंगिणी,' 'रसमंजरी', 'चन्द्रालोक', 'कुवलयानन्द' तथा 'वृत्त रत्नाकर' में से एक या दो ग्रन्थ सामने रख लेते थे और लक्षणों का टेढ़ा सीधा पद्यबद्ध अनुवाद करके हिन्दी मे संस्कृत उदाहरण से मिलता जुलता दूसरा उदाहरण गढ़ लेते थे । कहीं-कहीं उदाहरण का भी अनुवाद कर लेते थे । इस प्रकार मौलिकता के लालच में हिन्दी के ये आचार्य किसी संस्कृत-लक्षण ग्रन्थ का शुद्ध अनुवाद भी नहीं प्रस्तुत कर सके । यदि ये आचार्य संस्कृत के रीति ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद में ही अपने को लगाए होते तो हिन्दी का बहुत बड़ा उपकार कर जाते । मौलिकता के नाम पर अलंकारों या संचारी-भावों की संख्या बढ़ाने का प्रयास करते थे । इस काव्य रचना से पहला लाभ यह था कि आचार्यत्व की किताब हासिल हो जाती थी और अपने गढ़े हुए उदाहरणों के द्वारा वे अपने काव्यनैपुण्य का परिचय लोक को दे देते थे ।

ये हिन्दी काव्यशास्त्री मूलत: कवि थे । आचार्यत्व की मात्रा का प्राय: अभाव ही था । आचार्य पद के लिए जिस चिन्तनशील व्यक्तित्व की आवश्यकता होती है वैसा व्यक्तित्व रीतिकाल के आचार्य कहे जाने वाले अधिकांश व्यक्तियों में नहीं था। आचार्य और कवि दोनों के दो मार्ग हैं । एक साथ आचार्य और कवि दोनों बनने की इच्छा का दुष्परिणाम यह हुआ कि वे कवि न तो सफल आचार्य हुए और न सफल कवि ।

इस सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि पद्य शैली में सिद्धान्तों का विवेचन कठिन काम है। प्रौढ़ गद्य के आभाव में विवश होकर इस काम के लिए पद्य शैली ही अपनानी पड़ी। रीतिकाल के सब आचार्य संस्कृत के गम्भीर विद्वान ही थे, ऐसा नहीं कहा जा सकता। संस्कृत के गम्भीर ज्ञान का अभाव भी इस अधकचरे आचार्यत्व का एक कारण हो सकता है। डा० श्यामसुन्दरदास ने इस काल पर विचार करते हुये कहा है -- 'आचार्यत्व तथा कवित्व के मिश्रण में भी ऐसी खिचड़ी पकाई जो स्वादिष्ट होने पर भी हितकर न हुई। आचार्यत्व में संस्कृत की बहुत कुछ नकल की गई और वह नकल भी एकांगी हुई। सिद्धान्तों को लेकर उन पर विवेचनात्मक ग्रन्थों के निर्माण की ओर ध्यान नहीं दिया गया और केवल पुरानी लकीर को ही पीटते रहने की रुचि ने साहित्य के इस अंग की यथेष्ट पुष्टि न होने दी[१]।

हिन्दी काव्य के इस युग की सबसे बड़ी बात यह है कि सब समय राज-दरबारों में सूक्तियों की फुलझड़ियों से सबको चकित कर देने की आवश्यकता थी। उन दरबारों में मुक्तकों की बौछारों से कलेजा काढ़ लेना ही कवि का लक्ष्य था। सिद्धान्त प्रतिपादन दूसरी बात है और कलेजा काढ़ना दूसरी बात। प्रबन्ध रचना के अभाव का कारण यही मुक्तक रचना की प्रवृत्ति है।

इन आचार्यों से भिन्न एक दूसरी काव्यधारा में उन कवियों की सारस्वती है जिन्होंने रीति ग्रन्थों की रचना नहीं की है। लेकिन रीति ग्रन्थों के काव्य लक्षणों से उनका अनुराग था। अपने काव्य में उन लक्षणों का वे सम्मान करते थे। ये आचार्य पद के लोभी नहीं थे। काव्य रचना के समय रीति ग्रन्थ इनकी नजरों पर नाचते रहते थे। बिहारी, रसनिधि आदि ऐसे ही कवि हैं। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा है। ये कवि जहां लक्षण ग्रन्थों से दूर हटे हैं वहीं इनकी उक्तियों में अभिव्यक्ति की सहजता का सौन्दर्य आ गया है और वे हृदय-स्पर्शिनी हो गई हैं। बिहारी की नायिकाएं एक ही सांचे में ढली हुई सी मालूम पड़ती हैं। इसका कारण यह है कि बिहारी की नायिका शास्त्रों के लक्षणों से बनी हैं। 'बिहारी सतसई' में खंडिता के बीसों उदाहरण हैं। लक्षण ग्रन्थों के

---

१. हिन्दी भाषा और साहित्य -- डा० श्यामसुन्दर दास

आग्रह से सम्भोग चिह्नों की सूची पेश करनी पड़ी है । रीति काल के प्रत्येक कवि ने --चाहे वह लक्षण काव्यकार हो चाहे लक्ष्यकाव्यकार --शृंगार रस का व्यापक विवेचन प्रस्तुत किया है । शृंगार के आश्रय-आलंबन नायक-नायिका हैं । इसी नायक-नायिका के स्थान पर कृष्ण और राधा की जोड़ी प्रतिष्ठित की गई । नायिका भेद के अनेक नवीन आधार उत्पन्न कर लिए गए । प्रकृति का अर्थ उद्दीपन विभाव मान लिया गया। शृंगार के औचित्यपूर्ण तथा अनौचित्यपूर्ण अनेक स्थितियों की कल्पना कर ली गई । वियोग का वर्णन क्रम से पूर्वराग , मान , प्रवास तथा मृत्यु के रूप में किया गया । विरह की दशाओं के ऊहात्मक वर्णन भी प्रस्तुत किए गए जिसके लिए सबसे अधिक बदनाम हैं बिहारी । सखियों और दूतियों की भी कल्पना की गई । कुछ कवियों ने शृंगार के ही भीतर अन्य रसों का अन्तर्भाव कराने का अनुचित प्रयास किया है ।

रीतिकाल के शृंगार वर्णन की महत्वपूर्ण विशेषता है--नखशिख वर्णन । संस्कृत स्तोत्रोंसे प्राप्त देवताओं का सौन्दर्यांकन -शिखनख इसके लिए प्रेरक कहा जा सकता है । शृंगार के अतिरिक्त अन्य भावों की भी अभिव्यक्ति की गई । देव, बिहारी, भिखारीदास , सेनापति, बेनीप्रवीन और पद्माकर आदि शृंगार के प्रसिद्ध और प्रमुख कवियों में भक्ति भावना जीवन की पूर्ण सच्चाई के साथ देखी जा सकती है । इस काल में वीर रस की भी कविताएं लिखी गईं । महाराज मान सिंह (द्विजदेव) , अमेठी नरेश , गुरुदत्त सिंह (भूपति) , राव मर्दन सिंह (डौंडियाखेरा) , भगवन्तराय खीची (फ़तेहपुर), आदि नरपतियों के आश्रित कवियों ने ओजपूर्ण शैली में इनका वीरत्व गान किया[१] । रीति युग के उत्तरार्ध में औरंगज़ेब की कट्टर धार्मिक नीति के प्रतिक्रिया स्वरूप समस्त हिन्दू नरेशों में वीरत्व का संचार हुआ । महाराष्ट्र केशरी शिवा जी, राजपूतशिरोमणि महाराज जसवन्त सिंह, बुन्देलखण्ड के अप्रतिम वीर छत्रशाल तथा सिक्खों के गुरु गोविन्दसिंह की शौर्य गाथाएं वीर रस प्रधान कविता में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं । इनकी यश गाथाओं को वाणी प्रदान करने वाले कवियों -- भूषण, लाल, सूदन--को हम भूल नहीं सकते । ये हमारे जातीय अभिमान के प्रतीक हैं ।

---

१. किंजल्क में संगृहीत पं० व्रजकिशोर मिश्र का लेख

प्राय: ऐसा कहा जाता है कि रीतिकालीन कविता में जीवन दशाओं की अनेक रूपता का अभाव है । उसमें केवल प्रेम की रंगीनी वर्णित है । प्रेम या शृंगार जीवन का एक पक्ष है। लेकिन जब वह जीवन की प्रत्येक दिशा पर छा जाता है तब जीवन में गति नहीं रह जाती । रीतिकालीन कवि का यह दृष्टिसंकोच है कि वह जीवन के बहुविध चित्रों को न देख सका। लेकिन यदि ध्यान से देखें तो दिखलाई पड़ेगा कि इसी युग में कवियों का एक ऐसा भी वर्ग था जिसने जीवन की गहरी एवं तमसाच्छन्न कंदराओं में भी झांकने का प्रयत्न किया था। जीवन के सच्चे अनुभवों को वाणी का रूप देकर इन कवियों ने बड़ा उपकार किया। वृन्द, गिरिधर, घाघ , वेताल ऐसे ही कवि हैं ।

स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा और ठाकुर : रीतिबद्ध एवं रीतिसिद्ध कवियों से भिन्न इस युग में कवियों का एक ऐसा भी समाज था जो रीति ग्रन्थों के आधार पर की गई काव्य रचना की उपेक्षा करता था। वह काव्य रचना में रीति ग्रन्थों को सहायक नहीं, अपितु बाधक मानता था । रटे रटाए उपमानों का सहारा लेकर छन्द जोड़ने को वह खेल समझता था । ठाकुर का यह कवित्त देखिए --

सीखि लीन्हों मीन मृग खंजन कमल नैन
सीखि लीन्हों यश औ प्रताप को बहानो है।
सीखि लीन्हों कल्पवृक्ष कामधेनु चिन्तामणि
सीखि लीन्हों मेरु औ कुबेरु गिरि आनो है।।
ठाकुर कहत याकी बड़ी है कठिन बात
याको नहिं भूलि कहूं बांधियत बानो है ।
ढेल सों बनाय आय मेलत सभा के बीच
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानो है।।[१]

रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं को वे ढेले की तरह मूल्यहीन समझते थे । इस स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के प्रतिनिधि हैं घनानन्द । घनानन्द के सम्बन्ध में कहे गये

---

१. ठाकुर ठसक--छंद संख्या १२

निम्नलिखित सवैए में केवल घनानन्द के ही काव्य की नहीं , अपितु समस्त रीति-मुक्त कवियों के काव्य की विशेषताएं आ गई हैं --

"नेही महा व्रजभाषा प्रवीन औं सुन्दरतानि के भेद को जानै।
जोग वियोग की रीति में कोविद भावना भेद स्वरुप को ठानै।।
चाह के रंग में भीज्यो हियो , बिछुरे मिले प्रीतम साँति न मानै।
भाषा प्रवीन सुछन्द सदा रहै , सो घन जू के कवित्त बखानै"[1]।।

उक्त सवैए के 'सुछंद' शब्द पर विचार करते हुए पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने कहा है -- 'सुछन्द' शब्द का तात्पर्य है रीति से स्वच्छन्द , रीतिमुक्त । रीतिबद्ध या शास्त्र-बद्ध (क्लासिकल) प्रवृत्ति के बंधन से छूटकर ही ये रीतिमुक्त या स्वच्छन्द (रोमांटिक) होने वाले कवि थे । ये प्रेम की अनेक अन्तर्वृत्तियों के उद्घाटक , काव्यगत रमणीयता के नाना भेदों के विधायक , संयोग और वियोग की अनेक प्रेम दशाओं के मार्मिक द्रष्टा , भावना भेदों के सहृदय चितेरे , प्रेम रस के सिक्त भावुक, मिलन और विरह की हृद्गत अशांति के अनुभावक और भाषा प्रयोगों की सीमा के सच्चे ज्ञाता थे । ये वासना से पंकिल राजाओं के मानस का रंजन करने वाले चाटुकार नहीं थे । ये अपनी उमंग के आदेश पर रिझने वाले और काव्य विभूति द्वारा काव्य मर्मज्ञों को प्रभावित करने वाले थे । ये प्रेम के पंथ पर अग्रसर होने वाले रचना में मोतियों की सी निर्मल वाग्धारा प्रवाहित करने वाले और उससे काव्यमाला गूंथने वाले थे[2]'।

कविता के स्वरूप पर विचार करते हुए ठाकुर ने कहा है --

"मोतिन कैसी मनोहर माल गुहै तुक अच्छर जोरि बनावै।
प्रेम को पंथ कथा हरिनाम की बात अनूठी बनाय सुनावै।।
ठाकुर सो कवि भावत मोहिं जो राजसभा में बड़प्पन पावै।
पंडित और प्रवीनन को जोइ चित्त हरै सो कवित्त कहावै[3]"।।

---

१. बिहारी , पृ० १२
२. वही, पृ० १२, १३
३. ठाकुर-ठसक, छन्द संख्या १३ ।

पाश्चात्य आलोचकों के अनुसार रीतिबद्ध कवियों की कृति चेतनावस्था (कांशस स्टेट) में गढ़ी जाती है और रीतिमुक्त कवियों की कृति अन्त:संज्ञा (सब-कांशस-स्टेट) में होती है कहने का आशय यह है कि रीतिमुक्त कवि की कविता स्वयं प्रसूत होती है। उसके लिए मानसिक व्यायाम नहीं करना पड़ता । रीति ग्रन्थों के पन्ने नहीं उलटने पड़ते । अपनीकविता की इसी सहजता की ओर संकेत करते हुए घनानन्द ने लिखा है --

"तीछन ईछन वान बखान सो पैनी दसान लै सान चढ़ावत ।
प्राननि प्यारे भरे अति पानिप मायल घायल चोप चढ़ावत।।
है घनआनद छावत भावत जान सजीवन और ते आवत ।
लोग हैं लागि कवित्त बनावत मोहि तो मेरो कवित्त बनावै"[१] ।।

रीतिमुक्त कवियों की भी दो धाराएं हो जाती हैं । इनको समझने के लिए भक्ति कालीन काव्यधाराओं की ओर दृष्टि करनी पड़ेगी । भक्तिकाल में सगुण और निर्गुण दो धाराएं थीं । निर्गुण धारा का सम्बन्ध विदेशी सूफी रहस्यवाद से है । कबीर का ज्ञान मार्ग भी सूफियों के इस प्रेम की पीर से अप्रभावित न था। आगे चलकर सगुण भक्ति की कृष्ण भक्तिधारा भी इससे प्रभावित हुई । इस सम्बन्ध में विचार करते हुए पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने लिखा है -- "सूफी प्रेम की पीर ही नहीं, फारसी काव्य के प्रेम वैषम्य ने कवियों को छाप रक्खा । व्यापक प्रभाव का अनुभव इसी से किया जा सकता है कि शुद्ध भारतीय काव्य परम्परा में जब इसकी समाई न हो सकी तो यह जनता की संगीत परम्परा में भरपूर प्रसारित हुआ । लावनी और ख्याल में लोक भाषा रेखता या खड़ी बोली के सहारे इसकी दौड़ दूर तक हो गई । इसका स्पष्ट रूप है लौकिक प्रेम का अलौकिक प्रेम में लय । इश्क मजाजी का इश्क हकीकी में परिणति । आलम, ठाकुर और द्विजदेव शुद्ध भारतीय प्रेम पद्धति के प्रतिनिधि हैं । पर रसखानि , घनानन्द और बोधा में वह अपनी झलक मारती है"[२] । बुन्देलखण्डी ठाकुर स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के भीतर शुद्ध प्रेम के कवि हैं ।

---

१. घनानन्द ग्रन्थावली --सं० पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
२. बिहारी, पृ० १४

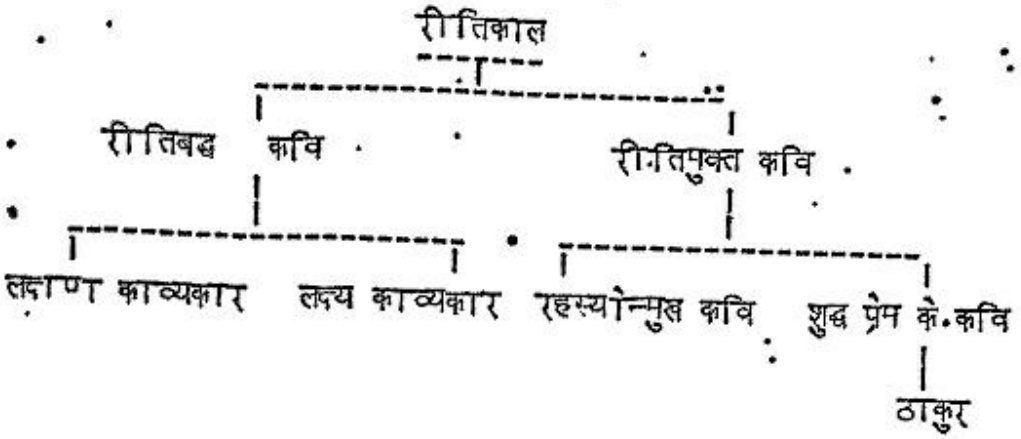
रीतिकाल
रीतिबद्ध कवि
रीतिमुक्त कवि
लक्षण काव्यकार
लक्ष्य काव्यकार
रहस्योन्मुख कवि
शुद्ध प्रेम के कवि
ठाकुर

---o---